अध्याय पंचम

कथा भाषा और शिल्पगत संरचना पर प्रभाव

आज के बदले हुए समय में सामाजिक ताना–बाना जिस तरह से बदला है उसने जीवन के कार्य व्यापार से लेकर कथा साहित्य को भी बदलने पर मजबूर किया है। आज का बदलता ढाँचा, कथ्य कर वैविध्य, भाषा और शिल्प का नयापन आज (समकालीन) के कथा साहित्य को नया आयाम दे रहा है। आज कहानी जिस तरह का दबाव झेल रही है वह आज के समय की परिस्थितियाँ हैं। आज ही नहीं हर दौर में कहानी, उपन्यास एवं आत्मकथा ने अपने समय के सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के दबावों को झेला है पर आज की कथा साहित्य अपने समय सामयिक मूल्यों को कहीं ज्यादा सम्प्रेषित कर रही है। साहित्य में शिल्प का बहुत बड़ा महत्व होता है। शब्द और सत्य अथवा भाषिक अभिव्यंजना के विभिन्न तरीकों को ही साहित्य शिल्प कहा जाता है। यह विचाराभिव्यक्ति का साधन है। प्रत्येक रचना का अपना कोई मूल संवेद्य (उद्देश्य) अवश्य होता है और रचनाकार उसे पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिए शिल्प का ही सहारा लेता है। शिल्प रचनाकार की भाव सम्पदा को प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्ति देता है। वैसे शिल्प से अभिप्राय रचना और रचनाकार के कौशल से भी लगाया जाता है, जिस रचनाकार का शिल्प विधान जितना सूक्ष्म और मौखिक होगा उसका कथानक उतना ही अधिक संवेद्य और अर्थपूर्ण होगा।

शिल्प विधि का शाब्दिक अर्थ है– ''किसी चीज को बनाने या रचने का ढंग अथवा तरीका। किसी वस्तु के रचने की जो विधियाँ अथवा प्रक्रियायें हैं उनके समुच्चय को ही शिल्प विधि के नाम से पुकारा जाता है।''[1]

समकालीन कहानी हडसन की मान्यताओं को दर किनार करके आगे बढ़ चुकी है। आज की कहानी अपने पारम्परिक गिनाये छः तत्वों पर अब आधारित नहीं है। अब उसका पुराना रूप बदल गया है। उसके साथ–साथ नये प्रयोग हो रहे हैं। उसमें नये तत्वों का समावेश हो रहा है। कभी–कभी प्रयोग सीमा के परे भी हो जा रहा है। कुछ कहानियाँ ऐसी लिखी जा रही है जिसमें कहानीपन गायब नजर आता है। कहानी पर विधागत संकट आ गया है। आज की कहानी चिंतन प्रधान हो गयी है। उसमें बौद्धिकता का समावेश हो गया है। आज कहानी का अंत निष्कर्षात्मक या उपसंहारात्मक नहीं होता है। इस संबंध में कहना है कि– ''कहानी का अंत एक अधर में लटका हुआ सा लगता है, वह प्रश्न जगाकर मौन हो जाती है। आज वह दुखती रग पर ऊँगली रखकर अलग हो जाती है, समस्या के निदान का कोई नुस्खा नहीं बताती। कहानी में बदली हुई पाठकीय और लेखकीय अपेक्षाओं के कारण आज उसमें निबंध, रिपोर्ताज, संस्मरण जैसी गद्य विधाओं के अनेक तत्व अन्तर्भूत हो गये हैं। अपने वर्तमान रूप में आज कहानी का रूप बंध पूरी तरह बदला हुआ है।''[2]

''समकालीन कहानी का मुख्य पात्र निम्नमध्यवर्गीय मनुष्य ही है, जो अपने परिवेश से सम्पृक्त है और सामाजिक जड़ों द्वारा अस्तित्व की खुराक पा रहा है। वह प्रवृत्तिमूलक या अहममूलक व्यक्ति नहीं है। जीवन के घात–प्रतिघातों को सहता, घटता–घटाता, क्षुद्रता और मनुष्यता को सहेजता, नकारता, अपनी निर्णय शक्ति को बचाता–लुटाता, इसी दुनिया और जीवन के अस्तित्व में विश्वास, जाने–अनजाने नये क्षितिजों को उद्घाटित करता और नये संबंधों, संतुलनों को जन्म देता, जिन्दगी को वहन कर रहा है।''[3]

समकालीन कहानी में आकार की दृष्टि से भी नये–नये शैल्पिक प्रयोग प्राप्त होते हैं। कहानी में वैचारिकता के आग्रह ने लम्बी कहानी की भूमिका तैयार की। कहानियाँ लघु उपन्यास का भी रूप ले लिया है। एक और शैल्पिक प्रयोग है जिसे औपन्यासिक कहानी की संज्ञा भी दी गई है। समकालीन हिंदी कहानी ने अनेक नवीन शैल्पिक प्रयोग कर अपने स्वरूप को समृद्ध कर नवीन आकर्षण प्राप्त कर लिया है।

आज कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर साहित्य की अत्यन्त गौरववान और सर्वाधिक समृद्ध विधा है।

समकालीन कहानी की प्रस्तुति का तरीका भी बदला है। चूंकि आज की कहानी यथार्थ का आग्रह बढ़ा है। इसलिए वह प्रायः मैं शैली में कही जाने लगी है। कहानी पढ़ने के बाद लगता है कि कहानीकार कहीं–न–कहीं या तो घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी है या परिस्थितियों का भोक्ता। समकालीन कहानियों की शुरूआत 'Once upon a time' या 'एक समय की बात है' वाक्यांशों से न होकर कहानीकार की किसी एक टिप्पणी से होती है। जैसे– ''यह झाड़ू सीधी किसने खड़ी की? बीजी ने त्योरी चढ़ाकर विकट मुद्रा में पूछा।''[4]

समकालीन कहानियाँ अब साहित्य की अन्य विधा संस्मरण, रिपोर्ताज, निबंध आदि के अधिक करीब लगती है। डॉ. पुष्पपाल सिंह समकालीन कहानी के संदर्भ में लिखते हैं– ''समकालीन कहानी के रूपबंध पर दृष्टि डालने से एक बात बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आती है कि आज की कहानी के संबंध में गद्य की कई अन्य विधाओं के तत्व समाहित हो गये हैं। वस्तुतः यह कहानी के पारम्परिक रूप को तोड़ने के प्रयत्न में कथ्य की माँग के अनुरूप स्वयं घटित होते चले गये हैं। आपत्ति वहाँ है जहाँ जबर्दस्ती किसी और विधा के तत्व कहानी में घुसपैठ कर उसकी कथात्मक संवेदना को क्षत करते हैं।''[5]

समकालीन साहित्य में प्रचलित पुरातन कथा शैलियों को अपनाने के साथ–साथ लोककथाओं के शिल्प का भी प्रयोग किया जा रहा है। आधुनिक कथाकार कहानी को केवल वर्णित (नैरेट) ही नहीं करता, वह पाठक से निकटतम तादात्म्य स्थापित कर अपने को सम्प्रेषित करना चाहता है। कहानीकार द्वारा वाचक (नैरेटर) की तटस्थ भूमिका छोड़कर आत्मकथात्मक रूप में, मैं को कहानी के बीच में स्थापित कर कथा कहने का प्रयोग पुराना ही है, किन्तु इसका भरपूर प्रयोग समकालीन कथाकार करते हैं। समानांतर कथा शिल्प के भीतर लोककथा प्रवाहित ही नहीं होती अपितु देश अथवा

अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज के महत्वपूर्ण घटनाक्रम का उल्लेख करके उसके आमने–सामने वर्तमान के कहानी के, घटना क्रम, स्थितियों का वैषम्य (कंट्रास्ट) दिखाते हुए तथ्य कोक संप्रेषित किया जाता है। घटनाओं अथवा कथन की पुनरावृत्ति से मन की विवृत्ति, स्वप्न, प्रतीक, फंतासी, शिल्प आदि समकालीन कहानी की प्रमुख विशेषतायें हैं।

समकालीन कहानीकार प्रयोगों की दृष्टि से अत्यन्त जागरूक हो गया है। अब वह प्रत्येक सामाजिक विसंगति पर अत्यन्त तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करने में नहीं हिचकता है। इस तरह ''समसामयिक कहानी और उसकी भाषा में आया जुझारू तेवर और प्रखर प्रत्यक्षता सिर्फ ऊपरी बदलाव नहीं है। उसके पीछे सामान्य मनुष्य के रोजमर्रा के अनुभवों का दहकता संसार है। कहानी में यह उसी की भाषा, तेवर और प्रतिक्रियाओं का सीधा प्रतिबिम्ब है। कहानीकार के अपने आस–पास के होते हुए अनुभव संसार में यह वापसी दरअसल, कहानी की अपनी मूल मानसिकता की ओर वापसी है। जहाँ अनुभव की समकालीनता और उसके दिपदिपाते वर्तमान की अहमियत होती है। समसामयिक कहानी का कथ्य और उसकी दृष्टि भी समकालीन मनुष्य की दुनिया और उसके जद्दोजहद से उपजी है और उसमें उसकी जिंदगी के निर्णायक संघर्ष और उसके अनुभव व्यक्त हो रहे हैं। समसामयिक कहानी अपने समय और परिवेश को व्यक्तिवादी, गवाक्ष से नहीं देखती, वह तो उन्हें एक खुली और वस्तुपरक जमीन के विस्तार में देखती है। अपने समय की चुनौतियों से निपटने के लिए उसके तेवर तने हुए, भाषा सीधी चुभती हुई और अभिव्यक्ति एकदम प्रत्यक्ष हो गयी है।''[6]

स्त्री लेखिका सुमन मेहरोत्रा अपनी कहानी 'क्रमशः' में आज के परिवेश में लड़कियों पर लड़कों द्वारा किये जाने वाले छेड़छाड़ को व्यक्त करता है। सुधा इस छेड़छाड़ का बड़े अनोखे ढंग से विरोध करती है। वह सभी लड़कियों को इकट्ठा करके कहती हैं– ''हम सभी लड़कों को दिखा देंगे कि हम उनसे कम नहीं हैं। ये रोज–रोज की बदतमीजी अब नहीं बर्दाश्त करेंगे। वे अगर गाली देकर बात करते हैं तो हम भी कर सकते हैं। वे अगर लड़कियों से छेड़छाड़ करते हैं तो हम भी उनके साथ वैसा ही करेंगे।''[7]

''शिल्प और भाषा–स्तर पर भी समकालीन कहानी अत्यंत समृद्ध और वैविध्यपूर्ण है। वस्तुतः किसी भी विधा में शिल्प और भाषा कथ्य के अनुरूप ही ढल जाते हैं। कथ्य की अनिवार्यतायें अपने अनुकूल शिल्प और भाषा की तलाश कर लेती है। अभिव्यक्ति में शिल्प और भाषा कथ्य के अनुगामी होते हैं।''[8]

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानी 'छुटकारा' में भंगी समाज की 'छन्नो' पर होने वाले अछूत और अनैतिकता के अत्याचार के लिए कड़ा विरोध करते हुए कहती हैं– ''ओ पतिविरता की चोदी, पहले अपने चुटियाधारी खसम से पूछ कि हमने रिझाया कि हमें यह रिझा रहा था। मैं कहती हूँ कि क्यों बूदे की लंगोटियाँ खोलूँ, जे जौहर उमर से ताल्लुक सोहते हैं नहीं तो बस्ती के चार मेहतर बुलाकर सारी पंडिताई झड़वा देती। आज हमारे मुँह देखकर अन्न–पानी त्यागे बैठा है और वहाँ आकर हमारे चूतर चाटता था।''[9]

साहित्य के माध्यम से संवेदना को गति मिलती है और साहित्य का आधार भाषा है। भाषा की संवेदना वह तत्व है, जिससे लेखक अपनी भावनाओं को पाठक तक पहुँचाता है। समकालीन कथा साहित्य में जब हम भाषा के स्तर पर विचार करते हैं तो प्रत्येक कथाकार हर तरह की रोमैंटिक प्रवृत्ति, काव्यात्मक उपमान शैली, बिम्ब योजना आदि के स्थान पर जीवन के सहज स्वाभाविक उपमान व बिम्ब का प्रयोग दिखाई देता है। भाषा की चित्रात्मकता व बिम्बांकन कथा की सम्प्रेषणीयता की संवृद्धि कर उसे एक सहज सौन्दर्य प्रदान करता है जिसकी बुनियाद जीवन के यथार्थ धरातल पर निर्मित है। भाषा में सजगता व सचेतनता विद्यमान रहती है। दलित स्त्री लेखिका रजतरानी मीनू जी की कहानियों की भाषा बहुत ही स्वाभाविक और पात्रानुकूल है। सौन्दर्य प्रतिमानों में उन्होंने कहानी के परिवेशानुकूल मौलिक प्रयोग किये हैं, जिससे कहानियों की ग्राह्यता बनकर सीधे पाठकों के दिल–दिमाग में उतर जाती है। आम जीवन में भोगे हुए यथार्थ एवं संवेदना की सहज सरल भाषा के साथ कथ्य की सृजनशीलता पाठक को आकर्षित करती है।

सबसे पहले वर्जीनिया वूल्फ ने स्त्री वाक्य की पहचान करते हुए लिखते हैं कि– ''हमें स्त्री वाक्यों के उदाहरण ढूँढ़ने होंगे, जो अधीनता में ही लिखे जाते हैं, मगर वे अधीनता की समीपवर्तिता का निराकरण करने वाली हो, प्राधिकृत बयानों से हमेशा भिन्न हों। यहाँ पर वाक्य–रचना उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, असल में इनमें वाचन या पढ़त खोलने की सम्भावना निहित रहती है। अर्थात् पुरुष वाक्यों का अनुकरण, परम्परागत स्वरूप–संरचना, नारी द्वेषी गालियों व शैलियों के प्रयोग तथा लिंग भेद को सूचित करने वाले शब्द प्रयोग आदि का स्त्री लेखन में महत्व नहीं है।''[10]

महिला लेखकों ने सर्जनात्मक स्तर परा 'पुरुष–समाज' की स्त्री–विरोधी मूल्य मर्यादाओं, मिथकों, आदर्शों एवं विधि निषेधों आदि की कड़ी आलोचना करते हुए, उन्हें तोड़ने के लिए अपने कथा साहित्य में अपने मन तथा विचार के अनुकूल स्त्री–पात्रों को गढ़ा और अपने लेखन में उन्हें प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास किया।

समानता, लोकतांत्रिकता तथा बंधुत्व सम्पन्न मनुष्य जीवन के सपने बटोरनेवाले दर्शन के रूप में स्त्री–विमर्श समाज को जगाने वाला है। अपनी प्रक्रिया में वह भाषा संरचना में सतत नवीकरण चाहता है। इस संदर्भ में यह मानी हुई बात है कि– ''स्त्री–अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए परम्परागत भाषा–संरचना कई दफा काफी नहीं होती। इसलिए 'स्त्री–भाषा' की अलग अवधारणा पेश की जाती है। गाली देने वाले पुरुष को प्रत्युत्तर में गाली देने के लिए स्त्री के पास जब शब्द नहीं होते, तब उसे नये शब्द ढूँढ़ने व गठित करने पड़ते हैं। विपर्यय यह है कि पितृसत्तात्मक समाज की गालियाँ, अश्लील शैलियाँ तथा असभ्य प्रयोग जब स्त्री प्रयुक्त करती है तब वह 'आत्मनिंदा' महसूस करती है। यहाँ पर पितृसत्तात्मक भाषा स्त्री के साथ खिलवाड़ करती है। स्त्री वे भाषा–शब्द इस्तेमाल करने के लिए विवश होती है, जो उसके विरुद्ध कार्य करते है। वर्चस्ववादी भाषा द्वारा स्त्रीत्व पर खिलवाड़ व निरन्तर उपहास इस संदर्भ में आसानी से सम्भव व सम्पन्न हो जाता है।''[11]

प्रेमचंद जी का मानना था कि– ''भाषा साधन है साध्य नहीं।''[12] अर्थात् भाषा लेखक के समाजोपयोगी विचारों को संप्रेषित करने का माध्यम है। इसके लिए लेखक को अपने अनुभव के आधार पर स्वयं प्रयत्न करना होगा, किसी अन्य स्रोत से अपनी भाषा के रूप निर्माण के लिए अनुज्ञा नहीं प्राप्त करनी होगी। उनका मत था कि भाषा के लिए किसी बने बनाये पुराने साँचे की खोज करना व्यर्थ है। आवश्यकता के अनुरूप भाषा निर्मित होती रहती है– ''जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बनती रहती है।''[13]

इसे कुसुम अंसल की कहानी 'मेरे आशिक का नाम' देखा जा सकता है। एस. पी. के सामने उपमा बेधड़क कहती हैं– ''एस.पी. साहब पहले ये बताइये कि आपके कानून में बदचलन जुल्म करने वाले शौहर के लिए क्या सजा है। दूसरे मैं हिन्दू नहीं हूँ एस.पी. साहब, मुसलमान हूँ। देखिये मेरी बाँह गुदा हुआ है, ये 'मेरे आशिक का नाम।'''[14]

समय, समाज और संसार में स्त्री–लेखन के विस्तृत आयाम है। सूक्ष्म निरीक्षण, दार्शनिक अंदाज, जीवन विवेक, असम्बद्ध रूपक, पाठान्तर यात्रा, नवबिम्ब, निज–प्रकृति का आविष्कार आदि सब उनके लेखन में आते जाते हैं। अतः लेखन में स्त्री–पुरुष की चर्चा समकालीन हैं क्योंकि कई संदर्भों में स्त्री व पुरुष के अलग सोच–विचार हैं, अलग प्राथमिकतायें हैं। उनके बीच में समान तत्व भी हो सकते हैं। इसलिए विरोध या विपरीत से बढ़कर सम्बन्ध व वैविध्य के बिन्दुओं की जाँच स्त्री–भाषा संरचना में होती है। परम्परागत भाषा पुरुष निर्मित हैं, इसलिए उसके मानकों पर स्त्री–लेखन का कसाव संश्लिष्ट है।

मिथकीय भाषा–स्वरूप का खण्डन, कहन परम्परा से शब्द चयन, लच्छेदार मुहावरेदार शैली का समवाय, असभ्य या असाधारण लगने वाले प्रयोग आदि को स्त्री भाषा संरचना की अहम विशेषतायें है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ 'स्वाँग' कहानी में लिखती हैं– ''मुँह उतर गया था, गफ्फार खाँ का। थूक गले में गटकते हुए बोले– ''ठीक कहते हैं साहब, कोई नहीं है हमारी कला का नाम लेना, न कोई बच्चा, न चेला ..... वे जानते हैं, अहमद थे उनके बुजुर्ग कला के लिए गलते रहे ताउम्र। उनकी नजर में हमारी ये कला गले पड़ी अधेड़ रखैल है।''[15]

''समकालीन कहानी की भाषा ने अपने को रोमानी भाषा के संस्कार से पूर्णतः मुक्त कर खुरदुरे यथार्थ की अभिव्यक्ति को सक्षम बनाया है। उसमें सीधे–सीधे अपनी बात खरे रूप में कहने की स्पष्टवादिता स्वतः आ गयी है। रूप चित्रण, सौन्दर्यांकन की रोमानी भाषा का मिजाज भी यहाँ पूरी तरह बदला हुआ है। छायावादी शैली रोमानी भाषा में होने वाला सौन्दर्यांकन यहाँ विलुप्त हो गया है और उसके स्थान पर खाँटी यथार्थ का पात्र परिचय मिलता है।''[16]

नीलाक्षी सिंह की कहानी 'उस शहर में चार लोग रहते थे' की भाषा शिल्प में दिखाई देता है– ''वह सठियाने की सीमा पार कर सत्तरवें साल में कब का घुस चुका एक बूढ़ा था। उसके गालों पर महीन दरारें थीं और ठीक बीच में उथला गड्ढा, जिससे उछाल–उछालकर फेंकता था वह, ठठाकर हँसी जाती अपनी हँसी।''[17]

साहित्य में बिम्ब से तात्पर्य होता है साहित्यकार की उस शक्ति से जिसकी सहायता से वह बीती हुई घटनाओं और विषयवस्तु का रंग, ध्वनि, गति, आकार–प्रकार सहित देशकाल परिस्थिति को ध्यान में रखकर शब्द चित्रों में वर्णित कर देता है। यह शब्द चित्र ठीक उसी प्रकार होता है जैसे कि उस घटना या वस्तु का रचनाकार था।

कथा साहित्य में बिम्ब कविता जितना प्रमुख नहीं माना जाता है न ही उसकी उतना आवश्यकता ही होती है। कथा की विषयवस्तु बिम्ब से नहीं क्रिया, व्यापार या घटना से अधिक जुड़ी होती है। घटना का पार्श्व, पृष्ठभूमि और भौतिक परिवेश दृश्यात्मक होने से बिम्ब की अपेक्षा रखते हैं। कहानी, उपन्यास व आत्मकथाओं में भी यही होता है। कहानी की बिम्बात्मकता से संदर्भ में कहना है कि–

''शब्द चयन के प्रति भी समकालीन कहानीकार अत्यन्त सचेत रहा है। उसने जीवन के सभी क्षेत्रों, उर्दू और अंग्रेजी आदि के शब्दों को मुक्त भाव से अपनाया है। वस्तुतः उर्दू और अंग्रेजी का प्रयोग भी प्रायः कहानीकार ने इस रूप में किया है कि वे शब्द अब केवल उर्दू और अंग्रेजी के ही नहीं रह गये हैं। अपितु जितने वे अपनी मूल भाषा में प्रचलन में हैं, उतनी ही बहुलता या स्वाभाविकता से उनका प्रयोग हिन्दी बोलने वाला कोई भी व्यक्ति करता है।''[18]

नासिरा शर्मा की कहानी 'मिस्टर ब्राउनी' में इस उपर्युक्त शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग हुआ है– ''हलो मिस्टर ब्राउनी! यू वाण्ट किटि कैट?'' गली में कारों के बीच प्लास्टिक फुटबाल खेलते बच्चे एकाएक भूरेलाल को देखकर रुक गये और रोज की तरह चिल्लाये।''[19]

समकालीन उपन्यासकारों का प्रस्तुतिकरण कथानक, चरित्र, वातावरण और शिल्प के विविध नवीन प्रयोगों एवं पुरातन अस्तित्व संयोग के साथ प्रवाहित करने का सफल प्रयोजन है। समकालीन उपन्यासकर अतित से सीखता, वर्तमान के यथार्थ को जीता तथा भविष्य का स्वप्न देखता है। स्त्री व दलित समाज की अपनी भाषा होती है। इस संदर्भ में ''दलितों की भाषा तो ठीक वही है जो हम गालियों के रूप में उन्हें देते रहे हैं– वह अश्लील, फूहड़, अशिष्ट और आक्रामक है– जिन शब्दों का हम उच्चारण भी नहीं करना चाहेंगे, वही उनके यहाँ धड़ल्ले से इस्तेमाल होते हैं। कभी–कभी तो स्त्री–पुरुष दोनों ही समान सहजता से उन्हें बोलते और सुनते हैं। वह हमें गुस्सा दिलाती है क्योंकि ये हमारा वह चेहरा दिखाती है जिसे दलित पीढ़ियों से देखते और डरते रहे हैं।''[20]

शैली में कलात्मक सौन्दर्य युक्ति–युक्त, तर्क–वितर्क होता है, उपयुक्त शब्द चयन, आवश्यक वाक्य रचना के सम्बन्ध और ध्वनि से लेखक कथावर्णन को सहज, सुन्दर और सार्थक बनाते हैं। उसे और आसान कर देते हैं, पाठक को सम्प्रेषणीयता में

आसानी हो जाती है। चित्रण शैली की दृष्टि से कथात्मक साहित्य में बिम्बमयता, दृश्यमानता व चित्रात्मकता के उत्कृष्ट प्रयोग मिलते हैं।

समकालीन उपन्यास स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं को रूपायित करते हैं, जिसमें भावुकता पर कम परन्तु तर्क–वितर्क के माध्यम से बौद्धिकता पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। समकालीन उपन्यासों में कथ्य, शिल्प एवं शैली की दृष्टि से सर्वथा नये और मौलिक प्रयोग हुआ है।

समकालीन उपन्यासों आत्मकथात्मक विधि को भी विशेष प्रश्रय मिला है। संकेतात्मक और प्रतीकात्मक शैली में भी उपन्यास लिखे गये। उदाहरणार्थ– ''वह पागलों की तरह मेरे जिस्म पर जगह–जगह चिकोटियाँ काटने लगा ..... यू आर ए ब्युटीफुल वोमेन, उसके शब्द मुझे अश्लील लगे। उसके गंदे होंठ मुझे छुए, इससे पहले ही मैंने उसकी कलाई में दाँत गड़ा दिये, यू विच ..... वह एकदम से छिटककर अलग हो गया।''[21] उपन्यास के विभिन्न तत्वों के प्रस्तुतीकरण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका भाषा और शैली की रहती है। भाषा शैली को रूप प्रदान करती है तो शैली भाषा को सार्थक बनाती है। इसी के आधार पर उपन्यास की रचनाप्रक्रिया विकसित होती है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में विवेकी राय, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, पंकज बिष्ट, अल्का सरावगी, सुरेन्द्र वर्मा, ऊषा यादव, प्रभा खेतान, ऊषा प्रियंवदा, प्रयाग शुक्ल आदि लेखकों की भाषा को अपनी कुछ विलक्षणताओं के लिए जानी जाती है।

रमणिका गुप्ता अपनी आत्मकथा 'हादसे' में लिखती हैं– ''मेरी इच्छा के विपरीत कोई मुझ पर कैसे अधिकार जमायेगा, यही मेरी जिद रही, मेरी इच्छा है तो सब संभव है नहीं तो कुछ नहीं। अपनी इच्छा से मैं किसी भड़भूजे के साथ भी सो सकती हूँ पर मेरी इच्छा नहीं तो मुख्यमंत्री भी मुझे नहीं पा सकते।''[22] समकालीन युग में प्रचलित विचारधारा का भी रचना प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है। समकालीन युग की जटिलता तथा कथ्य की सम्प्रेषणीयता के अधिक आग्रह से उपन्यासकारों का हर हिस्सा अनेक

प्रकार के प्रतीकों का सहारा लेता हे। आज के युग में उपन्यास का प्रत्येक हिस्सा इस समाज का तथा मानव का ही प्रतीक है। ''असल में दुनिया में नायिका एवं खलनायिका अलग–अलग लड़कियाँ नहीं होती हैं। एक ही लड़की अपने जीवन में नायिका की तरह प्रवेश करती है और खलनायिका की तरह स्थापित हो जाती है। मेरा तजुर्बा है कि आमतौर पर पत्नी दिन में खलनायिका और रात में नायिका की तरह पेश आती है।''[23]

''मैंने दुःख झेला है, पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया उसी दिन उस स्वीकृति के बाद मैंने खुद को एक बड़ी गैर जरूरी लड़ाई से बचा लिया, कुछ के प्रति मेरा यह समर्पण था सारे जुल्मों के सामने ..... सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिंदगी की चुनौतियों का सामना करने को तैयार हूँ।'' [24] शिल्पगत प्रवृत्तियों में घटना स्पष्ट और इतिवृत्त सर्वसाधारण होना आवश्यक है। समकालीन स्थितियों का वैषम्य, अत्याचारों का विरोध, शोषित, दलित, देहाती और निम्नमध्यवर्गीय वर्ग के प्रति प्रवाह सहानुभूति और स्त्री चेतना को सफल अभिव्यक्ति मिलती है।

कथा साहित्य जीवन यथार्थ की ऊपरी सतह नहीं है वह– ''मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ भी समझाता रहा है। मैंने अपने आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हाँ टूटी हूँ..... बार–बार टूटी हूँ ..... कहीं चोट के निशान नहीं ..... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोदे में परिवर्तित नहीं हो पायी। इस उम्र में भी पूरी की पूरी एक साबुत औरत हूँ जो जिन्दगी को झेल नहीं रही बल्कि हँसते हुए जी रही हूँ।''[25]

हरकत की भाषा और उससे उपजा एक बिम्ब देखने योग्य है– ''तो इतना मुझसे भी सुन लो, मैं यह नहीं होने दूंगी। पिता जी से कह दो, मुझे बाँधकर किसी के साथ विदा कर देने का प्रयत्न किया तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगी। ..... यदि मुझे अपने ढंग से जीने नहीं दोगे तो अपने ढंग से मर जाऊँगी।''[26]

सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

1 समकालीन लेखन और आधुनिक संवेदना, संपादक– कल्पना वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण– 2010, पृ० 258

2 समकालीन हिंदी कहानी, डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० 137

3 हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थ बोध के विविध रूप, डॉ० कृपाशंकर पाण्डेय, समीक्षा प्रकाशन, शिवकुटी इलाहाबाद, संस्करण 2010, पृ० 139

4 औरत की कहानी, संपादक– सुधा अरोड़ा, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण 2010, पृ० 50

5 समकालीन हिंदी कहानी, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ० 143–144

6 समसामयिक हिन्दी कहानियाँ, धनंजय वर्मा, भूमिका से

7 मुझे नहीं मालूम, सुमन मलहोत्रा, पृ० 61

8 समकालीन हिंदी कहानी, डॉ० पुष्पपाल सिंह, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृ०

9 हंस, अगस्त 1999, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 35

10 स्त्री अध्ययन की बुनियाद, प्रमीला के.पी., राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ० 141

11 स्त्री अध्ययन की बुनियाद, प्रमीला के.पी., राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2015, पृ०

12 सम्मेलन पत्रिका, (शोध त्रैमासिक) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भाग 101, सं० 3, पृ० 107

13 वही, पृ० 107

14 हंस, दिसम्बर 1998, संपादक– राजेन्द्र यादव, पृ० 20

15 कठपुतलियाँ, मनीषा कुलश्रेष्ठ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ० 129

16 समकालीन हिंदी कहानी, डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ० 55

17 परिन्दे का इन्तजार–सा कुछ, नीलाक्षी सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2006, पृ० 67

18 समकालीन हिन्दी कहानी, डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ० 156

19 इब्ने मरियन, नासिरा शर्मा, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 82

20 काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता, राजेन्द्र यादव, संकलन–संपादन–बलवंत कौर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 176–77

21 अपने–अपने कोणार्क, चन्द्रकान्ता, पृ० 78

[22] हादसे, रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण–2005, पृ० 7

[23] एक पत्नी के नोट्स, ममता कालिया, पृ० 17

[24] छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ० 10

[25] अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान

[26] क्षमा करना जीजी, नरेन्द्र कोहली, पृ० 21